ECONSPEAK: A Journal of Advances in Management IT & Social Sciences,
Vol. 7, Issue 6, June 2017 Impact Factor 5.132 ISSN: (2231-4571)
www.skirec.org Email Id: skirec.org@gmail.com

# नब्बे के दशक तथा उसके बाद का हिंदी सिनेमा और बदलता मध्य वर्ग

- डा. रिम्पी खिल्लन सिंह

सिनेमा जीवन के विभिन्न संदर्भों को दर्शाने का सबसे सशक्त माध्यम है क्योंकि सिनेमा की "लार्जर देन लाईफ" वाली प्रकृति समाज के प्रत्येक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करती है | सिनेमा अपने आप में एक उद्योग है | भारतीय सिनेमा जिसे बालीवुड कहा जाता है, उस बालीवुड का एक बड़ा हिस्सा गीत, संगीत और पापुलर तत्वों के साथ जुड़ा है | अस्सी के दशक के भारतीय सिनेमा का पूरा चरित्र मसाला फिल्मों पर आधारित था और एक महानायक की छवि को उभारने वाला था |वह महानायक जो व्यवस्था और समाज से लड़ता है, विद्रोह करता है परन्तु जैसे जैसे समाज बदला, समाज की इकाईयों और उसकी व्यवस्था में भी परिवर्तन आता चला गया और वैसे वैसे सिनेमा भी बदलता चला गया |

"भारतीय सिनेमा :एक अनंत यात्रा " नामक पुस्तक में प्रसून सिन्हा लिखते हैं कि "नब्बे के दशक के अंदर न सिर्फ आर्थिक उदारीकरण में विदेशी ताकतों का सहयोग मिलने लगा बल्कि देश की आंतरिक सुरक्षा भी गड़बड़ाने लगी | बाबरी मस्जिद गिराये जाने के विरोध में मुंबई शहर में हुए विस्फोट ने देश की नींव हिला कर रख दी | पाकिस्तान की शह पर आतंकवादी गतिविधियां इतनी बढ़ गई कि देश की आंतरिक सुरक्षा पर खतरे के बादल मंडराने लगे | भारतीय फिल्मों का स्वरुप भी अधिक हिंसक होने लगा| सन् 1993 में सुभाष घई ने अपनी फिल्म का नाम ही 'खलनायक' रखा जिसमें संजय दत्त ने प्रमुख भूमिका निभाई |" [1] उन्होंने यह भी लिखा कि " कभी फिल्मों में नायक जहाँ दूसरों की खुशी के लिए अपना सब कुछ त्याग कर देते थे वही ं नब्बे के दशक में बनी इन फिल्मों के नायक अपनी खुशी के लिए सब कुछ छीन सकते थे |"[2] इस प्रकार जीवन और मूल्यों में स्पष्ट रूप से बदलाव दिखाई दे रहे थे | नायक के भीतर खलनायक की छवि उभर रही थी |

नब्बे के दशक में देश और दुनिया में बड़े परिवर्तन हुए | 1991 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश में आने की अनुमति दी | भारत आर्थिक दृष्टि से भूमंडलीकरण की ओर अग्रसर हुआ | मीडिया भी सरकारी तंत्र से बाहर आने लगा था | किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में जनसंचार माध्यमों में हम भूमंडलीय स्थितियों को कहीं साफ तौर पर पहचान सकते हैं | इनका गहन संबंध इन माध्यमों के भूमंडलीय विस्तार से है | भारतीय सिनेमा में भी यह विस्तार और भी

व्यापक रूप में दिखाई देने लगा था क्योंकि भारतीय फिल्में पूरे ग्लोब में बसे भारतीयों को तो आकर्षित कर ही रहीं थीं, साथ ही साथ विदेशी भी इसमें दिलचस्पी लेने लगे थे।

सिनेमा मनोरंजन का प्रमुख माध्यम था लेकिन उसके साथ साथ बहुत सारे वृत्त चित्रों का भी निर्माण हुआ। यूनेस्को की रिपोर्ट में 1988 में इस बात को स्पष्ट रूप से बताया गया कि "दुनिया में प्रतिवर्ष लगभग 800 फिल्में अकेले भारत में बनती हैं। जन प्रचार के अन्य माध्यमों के विपरीत एशिया के ग्यारह देश विश्व में बनने वाली कुल फिल्मों में से आधी फिल्मों का निर्माण करते हैं जबकि एक तिहाई फिल्मों का निर्माण यूरोप के इक्कीस देशों और (पूर्व) सोवियत संघ मिलकर करते हैं। शेष फिल्में लगभग बीस देश बनाते हैं जिनमें अमेरिका, मेक्सिको, मिश्र और ब्राज़ील प्रमुख हैं।"[3] फिल्म निर्माण एक सामूहिक कर्म है। भारत में आज कम लागत की फिल्मों का निर्माण भी हो रहा है। यह फिल्में कथा प्रधान हैं और इनमें सितारों से अधिक कथा का महत्व है। जबकि एक समय था जब मुख्यधारा की फिल्मों का बजट करोड़ों में होता था। हालीवुड की नकल या तर्ज पर बनी एक्शन फिल्मों का बजट तो और भी अधिक बढ़ जाता था।

1991 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन आया। निजीकरण की प्रक्रिया तेज़ी से चली। नयी आर्थिक नीतियों का भारतीय समाज पर गहन असर दिखाई दिया। आम लोगों के रहन सहन, बोलचाल और सोचने समझने के तरीके में भी अंतर आने लगा। विदेशी मुद्रा के निवेश से जहाँ स्थानीय कल कारखाने बंद हुए। गरीबी और अमीरी के बीच की खाई भी बढ़ती चली गयी। भारतीय मीडिया की दशा और दिशा दोनों में परिवर्तन हुए। बाज़ारवाद का प्रभाव गहन से गहनतम होता चला गया। सिनेमा स्वयं में एक उत्पाद बन चुका था। यह उत्पाद उस पूरे पैकेज का हिस्सा था जिसमें सामाजिक संदेश से अधिक पापुलर तत्वों को महत्व दिया गया था। यह प्रक्रिया अस्सी के दशक के अंत से ही शुरू हो चुकी थी। अस्सी के दशक तक मुख्यधारा का सिनेमा और समांतर सिनेमा दो अलग वर्ग थे। मुख्यधारा का सिनेमा आम लोगों की ज़िंदगी और मनोरंजन से जुड़ा था वहीं समांतर सिनेमा का दर्शक वर्ग बुद्धिजीवी समाज था। नब्बे के बाद यह रेखा क्षीण होती चली गई और कला सिनेमा जैसी कोई चीज़ अलग से नहीं बची।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ साथ सामाजिक मूल्यों, संबंधों और जीवन जीने के तौर तरीकों में भी परिवर्तन आया। जवरीमल्ल पारख अपने लेख "भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी सिनेमा" में लिखते हैं कि "मल्टीप्लेक्स महज़ इमारत नहीं है वरन् वह उस मौल संस्कृति का हिस्सा भी है जो

महानगरों और शहरों में तेज़ी से उभरा है | मध्यमवर्ग में पनपी उपभोक्ता संस्कृति में फिल्म देखना भी उपभोक्ता संस्कृति का हिस्सा है | यह मनोरंजन से कुछ ज़्यादा है | यह शापिंग के आनंद का विस्तार है | इस तरह इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने फिल्म देखने को भी एक उपभोग की वस्तु बना दिया है जिस तरह वहाँ बैठकर कोका कोला पीना या पाप कार्न खाना | इस देखने में न तो रचनात्मक आस्वादन की संभावना बनती है और न ही जीवन के प्रति किसी विवेकपूर्ण समझ को विकसित करने की |"[4] यह बात महत्वपूर्ण है कि मनोरंजन की प्रक्रिया में फिर भी रचनात्मकता होती है परन्तु उपभोग की प्रक्रिया में यह पूरी तरह से गायब हो जाती है |

नब्बे के दशक तक आते आते मध्यवर्ग की आकांक्षाएँ और सपने भी बड़े होते चले गये | इन सपनों में पूँजीवादी उदारवाद का चरित्र, पूँजी और उससे जुड़ी हुई चुनौतियां भी साफ तौर पर दिखाई देने लगीं | इस दौर में ऐसी बहुत सी फिल्में बनीं जिनमें भारतीय उद्योगपति बहुत बड़ा व्यापार करते हैं | उनका काम बाहर के कई देशों तक विस्तृत है | इसमें अनिवासी भारतीय भी शामिल हैं | वे विदेश में रहते हुए भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहना चाहते हैं और वहाँ रहते हुए भी अपने बच्चों का विवाह भारत में करना चाहते हैं | इन फिल्मों में विदेशी लोकेशन और शादियों के भव्य सैट लगाने तक निर्माताओं ने बहुत पूँजी खर्च की | "मीडिया व स्त्री : एक उत्तर विमर्श" नामक पुस्तक में लेखक द्वय लिखते हैं "फिल्मों के साथ बहुत सारे उप उद्योगों के जुड़ जाने के कारण आम फिल्में एक पैकेज के रूप में सामने आती हैं | इस तरह फिल्मों को अब एक पैकेज के रूप में सामने रखा जाता है कि कम से कम पैकेज का एक हिस्सा तो दर्शकों के अनुकूल होगा और उसमें भी दर असल यह पैकेज सीधे उन उप कंपनियों या वितरकों के सामने भी रखा जाता है जो इसके किसी एक हिस्से को बेचते हैं, जैसे म्यूज़िक कंपनियां | इसके चलते ही
हम पाते हैं कि म्युज़िक भी एक उद्योग के रूप में विकसित हो गया है | राजश्री प्रोडक्शन ने ऐसी अनेक फिल्में बनाई जहाँ अस्सी के दशक की हिंसा से हटकर किशोर वर्ग के प्रेम को माध्यम बनाया गया और फिर से संगीत के सुनहरे दौर को वापिस लौटा लाया गया |"[5]

इस प्रकार संगीत का भी भूमंडलीय विस्तार हुआ | प्रसून सिन्हा लिखते हैं "ऐसा नहीं है कि नब्बे के दशक में सिर्फ "एंटी हीरो" विषय वस्तु पर बनीं फिल्में ही सफल रही हैं | बल्कि यूँ कहें कि नब्बे के दशक में बनी तमाम फिल्मों में सिर्फ दो ही ऐसी फिल्में थीं जिन्हें इस पूरे दशक सबसे बड़ी हिट फिल्म के रूप में जाना जाता है | इन दो फिल्मों में एक थी राजश्री प्रोडक्शन के बैनर्स तले बनी निर्देशक सूरज

बड़जात्या की महान पारिवारिक चर्चित फिल्म "हम आपके हैं कौन" और दूसरी थी निर्माता यश चोपड़ा और बतौर निर्देशक आदित्य चोपड़ा की प्रथम फिल्म "दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे" |..... इन दोनों फिल्मों की कथावस्तु पारिवारिक थी और ये दोनों फिल्में पूरी तरह से सुपरहिट फिल्में कही जायेंगी | इनके गाने, इनके अदाकार और सबके सब ने दर्शकों का दिल मोह लिया था |" [6]

नब्बे के दशक में नायिका की परंपरागत छवि भी टूटी परंतु यहाँ यह देखना भी ज़रूरी है कि नब्बे के बाद के दशक का सिनेमा न तो इसलिए काम कर रहा था कि स्टीरियोटाइप टूटे ं और न ही इसके लिए कि उनका निर्माण हो | सिनेमा पूरी तरह बाज़ार से संचालित हो गया था और एक उद्योग की दृष्टि से ही काम कर रहा था | कुछ फिल्मों में स्टीरियोटाइप यदि टूट भी रहे थे या निर्देशक नये प्रश्नों से यदि रूबरू भी हो रहा था जैसे कुंदन शाह निर्देशित फिल्म "क्या कहना" जिसमें नायिका जिन बातों के कारण अनब्याही माँ बनना चाहती है, वह भी भावना प्रधान ही अधिक है और अंत में वह फिर से पुरूष की शरण में चली जाती है | इस प्रकार यहाँ स्त्री की परंपरागत छवि कहीं टूटती है तो कहीं फिर उभर कर आती है|

नब्बे के दशक का सिनेमा नये प्रश्नों से भी जूझता दिखाई देता है जो जटिल होती हुई ज़िंदगी को सामने रखते हैं | विशेष तौर पर बीसवीं सदी तक स्क्रीन प्ले बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है और बदलती दुनिया की जटिलताओं को पूरी परिपक्वता के साथ पेश करने लगता है | जिनमें राजकुमार हिरानी द्वारा निर्देशित 2009 में बनी फिल्म "थ्री इडियट्स" अत्यंत महत्वपूर्ण है | अस्सी के दशक तक जो सरकारी नौकरी की आकांक्षा युवा वर्ग में दिखाई देती है और जो परंपरागत रोज़गार के रूप दिखाई देते हैं, उन्हें यहाँ तोड़ने का प्रयास किया गया है | शिक्षा का उद्देश्य नौकरी तक सीमित न दिखाकर जीवन की सार्थकता के साथ जोड़ा गया है | यह फिल्म चेतन भगत के उपन्यास पर आधारित है | यह फिल्म मसाला फिल्म के तत्वों को पूरी तरह न छोड़ते हुए भी एक बड़ा संदेश देती है और हँसी मज़ाक़ में इतनी गंभीर बात कह जाती है | इसी तरह "तारे ज़मीं पर" फिल्म भी माता पिता से रूबरू होती है और उन्हें अपने बच्चों को अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन न बनाने का आग्रह करती है | "तारे ज़मीं पर" फिल्म यह बताने का प्रयास करती है कि प्रत्येक बच्चा अपने आप में महत्वपूर्ण है | वयस्कों को उन्हें अपना उपनिवेश नहीं समझना चाहिए | इस समय तक आते आते फिल्में मसाला फिल्में नहीं रह गयीं और कंटेंट प्रधान हो गयीं | सितारों की फिल्मों में भी मध्यवर्गीय यथार्थ, जीवन और उसकी चुनौतियां महत्वपूर्ण रूप से उभरने लगीं | एक नायक से अधिक किरदार और पात्र महत्वपूर्ण हो गये थे | अब

नायिका प्रधान फिल्में भी तेज़ी से बनने लगीं | "तनु वेड्स मनु" में बदली विवाह संस्था के रूप को सामने लाया गया | "क्वीन" फिल्म भावनात्मक रूप से स्त्री की स्वावलंबिता को दर्शाती एक सशक्त फिल्म है और मध्यवर्गीय समाज के भीतर के बदलावों को दर्ज करती है | रोज़गार की तलाश में महानगरों में रह रहे स्त्री पुरूषों में लिव इन संबंधों को भी यह सिनेमा अभिव्यक्ति प्रदान करता है | "सलाम नमस्ते", "बचना ए हसीनों " ऐसी ही फिल्में हैं |

आज भारतीय सिनेमा में बहुत सारे परिवर्तन दिखाई देते हैं | "दंगल" जैसी फिल्म बदलते ग्रामीण मध्यवर्गीय समाज की भी कहानी कहती है | सिने चिट्ठा के डेस्क से इस फिल्म की समीक्षा छपी जिसमें लिखा गया "हरियाणा के उस छोटे से गाँव से लेकर वैश्विक पटल पर अपनी बेटियों की उपस्थिति दर्ज कराने के लिए महावीर को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है | कई ट्विस्ट और टर्न के बाद उन्हें कामयाबी मिलती है |"[7] आगे इस लेख में लिखा गया है कि "यह फिल्म अच्छे सिनेमा की कैटेगरी में आती है |"[8] इस प्रकार सिनेमा हिंसा प्रधान फिल्मों को कुछ हद तक छोड़ कर जीवन की चुनौतियों को दर्ज करता है | यह बेटियों की महत्वाकांक्षाओं को भी दर्ज करता है | दंगल में तो पिता की महत्वाकांक्षा है पर "फैशन" फिल्म में एक लड़की की माडल बनने की महत्वाकांक्षा को पूरी गंभीरता से दिखाया गया है | "सुई धागा" फिल्म भी एक छोटे दर्जी के बड़े फैशन डिज़ाइनर बनने के सपने की कहानी है | यह सब महत्वाकांक्षाएं वैश्वीकरण का ही परिणाम हैं और दिखाती हैं कि मध्यमवर्ग और निम्न मध्यम वर्ग भी आज बड़े सपने देखता है जो अपने आप में सकारात्मक है परन्तु इससे प्रतिद्वंद्विता का भाव भी बढ़ा है और कामयाबी एक बड़ा मूल्य बनकर उभरी है | इस विषय में जवरीमल्ल पारख लिखते हैं कि "भूमंडलीकरण में कामयाबी ही सबसे बड़ा मूल्य है |"[9]

यह बदलता मध्यमवर्ग कामयाबी को ही सबसे बड़ा मूल्य मानता है | इस प्रकार नब्बे के बाद का हिंदी सिनेमा बदलते मध्यमवर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं और उनके जीवन में आ रही जटिलताओं का जीवंत दस्तावेज़ है | यह मध्यमवर्ग के सपनों को हमारे सामने यथार्थ की चुनौतियों और सच्चाइयों के साथ उपस्थित करता है | इसमें मध्यमवर्ग तो बहुत आया है पर मेहनतकश ग्रामीण की उपस्थिति बहुत कम है | जवरीमल्ल पारख इस विषय में लिखते हैं कि "इस दौर में मेहनतकश वर्ग का प्रतिनिधित्व लगभग खत्म सा हो गया है | किसान और मज़दूर इन दो वर्गों को केन्द्र में रखकर बहुत कम फिल्में बनी हैं | "लगाने", "स्वदेश", "स्वराज", "पिपली लाईव" आदि कुछ फिल्में अपवाद स्वरूप गिनायी जा सकती हैं लेकिन अधिकार फिल्में मध्यमवर्ग के विभिन्न स्तरों या अभिजात वर्ग पर ही केंद्रित हैं |"[10]

आज बाज़ार महत्वपूर्ण है | नब्बे के बाद का सिनेमा जहाँ एक ओर बदलते जीवन की जटिलताओं और चुनौतियों को दर्ज करता है वहीं बाज़ार के साथ भी कदमताल करता है | बाज़ार का विस्तार बड़े पर्दे से लेकर छोटे पर्दे और ओटीटी प्लेट फार्म तक है | नेटफ्लिक्स और अमेज़न प्राईम जैसे प्लेट फार्म ने कथा कहने के ढांचे को फिर बदला है और फिल्म यहाँ भी उपभोग की वस्तु के रूप में और एक पैकेज डील के रूप में ही सामने आई है | यहाँ सिनेमा में अनेक बदलाव देखे जा सकते हैं जो नयी चुनौतियों के साथ साथ नयी संभावनाएं भी पैदा करते हैं |

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारतीय सिनेमा : एक अनंत यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ 177
2. भारतीय सिनेमा:एक अनंत यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ 178
3. मेनी वाइसेज,वन वर्ल्ड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, 1988, पृ 49
4. भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी सिनेमा, जवरीमल्ल पारख, संवेद पत्रिका, अंक 36, क
5. मीडिया व स्त्री : एक उत्तर विमर्श, विजेंद्र सिंह चौहान, रिम्पी खिल्लन (लेखक द्वय) पृ 92
6. भारतीय सिनेमा:एक अनंत यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ 178
7. दंगल फ़िल्म की समीक्षा, सिने चिट्ठा के डेस्क से, वर्ष 2016
8. दंगल फ़िल्म की समीक्षा, सिने चिट्ठा के डैस्क से, वर्ष 2016
9. भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी सिनेमा, जवरीमल्ल पारख, संवेद पत्रिका अंक 36
10. भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी सिनेमा, जवरीमल्ल पारख, संवेद पत्रिका, अंक 36

डा. रिम्पी खिल्लन सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय
सिविल लाइन्स, दिल्ली 54
Email : Rimpi.Khillan@gmail.com